विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ७, रविवार, तारीख १७-८-१९८०
वचनामृत-१८५, १९३, १९७ प्रवचन-१०

१८५ बोल। फिर से थोड़ा लेते हैं। **मुनिराज कहते हैं...** पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि, उनके कलश में है। **चैतन्यपदार्थ पूर्णता से भरा है।** भगवान आत्मा पूर्ण गुण और शक्ति से भरा है। **उसके अन्दर जाना...** अन्तर गुण जो ज्ञान और आनन्द है, जो अनन्त भरा है, उसमें जाना **और आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना,...** आहाहा! आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना। अन्तर आनन्द, ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, विभुता आदि अनन्त आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना, मुनिराज कहते हैं, **वही हमारा विषय है।** मुनिराज का यह विषय है। क्रियाकाण्ड कोई उनका विषय नहीं है। आहाहा! क्रियाकाण्ड आ जाए, स्वतन्त्र जड़ करे। विषय यह है। आहाहा!

चैतन्य में स्थिर होकर अपूर्वता की प्राप्ति नहीं की,... आहाहा! **अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की, तो हमारा जो विषय है,...** मुनि का विषय ध्रुव द्रव्य है। नियमसार में कलश है। हमारा विषय तो आत्मा आनन्द अखण्डानन्द प्रभु हमारा विषय है। समकिती को भी वह विषय है परन्तु मुनि को विशेष है। **अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की,...** हमारा विषय है। आहाहा! समाधि, चैतन्य में स्थिर रहना, यह मुनि का विषय है। आहाहा! बाहर में क्या करना, वह कुछ आया नहीं। अन्दर ठहरना। परन्तु स्थिर कब हो? कि वह चीज़ ज्ञान में भासित हो, ज्ञान में ज्ञेय हो, पूरी चीज़ ज्ञान में ज्ञेयरूप से भासित हो, भासन हो, बाद में उसमें स्थिर हो सकता है। कहते हैं कि हमने प्रगट नहीं किया। वह तो व्यवहार से बात करते हैं। है तो मुनि। अल्पपना है, अभी केवलज्ञान नहीं है, इसलिए अपनी दीनता वर्णन करते हैं। आहाहा! है तो महामुनि। छट्ठे-सातवें गुणस्थान में झुलनेवाले हैं। परन्तु हमें केवलज्ञान नहीं है। अरेरे! वह हमारी दीनता है। आहाहा! उनकी दीनता का वर्णन करते हैं। अरे..! हमने प्रगट किया नहीं। बाहर में उपयोग आता है।

बाहर में उपयोग आता है, तब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचारों में रुकना होता

है,... क्या कहते हैं ? अन्तर में तो अकेले ज्ञायक का ही अनुभव होता है परन्तु विकल्प आया। उसमें रह सके नहीं तो द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु; गुण अर्थात् त्रिकाली शक्ति, सत् का सत्त्व, सत् जो भगवान आत्मा, उसका सत्त्व, उसको यहाँ गुण कहते हैं। आहाहा! हमें अन्तर में ध्यान में रहना, वही हमारा विषय है, परन्तु हम उसमें रह नहीं सकते, तब द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार में रुकना होता है। द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु; गुण-त्रिकाली शक्ति-स्वभाव; पर्याय-वर्तमान दशा। आहाहा! ये द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य आत्मा त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, जिसमें गुण का भेद नहीं, पर्याय का भेद भी नहीं, अभेद वस्तु। पर्याय जिसको विषय करे, वह अभेद चीज़ है। पर्याय का विषय पर्याय भी नहीं है। आहाहा! पर्याय का विषय अभेद चैतन्य, वह द्रव्य और उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण और उसकी वर्तमान अवस्था पलटना, पलटना, पर्याय पलटती है, वह उसकी पर्याय। है तो मुनि। आचार्य नहीं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं।

मुनि कहते हैं कि हमारे विषय में हम रह सकते नहीं, स्थिर नहीं रह सकते। इतनी दीनता बताते हैं। विकल्प आता है तो द्रव्य-गुण-पर्याय में रुकना पड़ता है। आहाहा! बाकी रहना तो अन्दर में रहना वह वस्तु है। हमारा विषय तो अन्दर में आनन्द में स्थिर होना (वह है)। ज्ञायक आनन्द ऐसा जो दृष्टि में लिया है, आहाहा! सम्यग्दर्शन में जो ज्ञायक और आनन्द अतीन्द्रिय जो दृष्टि में लिया है और अनुभव में लिया है, हमें तो वहीं रहना, वही हमारा विषय है। आहाहा! है तो महामुनि। अल्प काल में मेरे हिसाब से तो तीर्थंकर होंगे। भविष्य में। ऐसी कथन शैली अन्दर में है। है मुनि, आचार्य नहीं है परन्तु कहते हैं, उपयोग जब बाहर में जाता है, तब द्रव्य-गुण-पर्याय में (लगता है) परन्तु बाहर में उपयोग जाए तब यह (होता है)। अपने द्रव्य, गुण, पर्याय तीन में। आहाहा! वह भी विकल्प है, राग है। अपना द्रव्य त्रिकाली, ज्ञान और आननद आदि वर्तमान गुण त्रिकाली और वर्तमान उसकी अवस्था-निर्मल शान्त वीतरागी। इन तीनों का विचार आत्मा है तो विकल्प आता है। आहाहा! यह नियमसार में गाथा है। नियमसार में गाथा है। द्रव्य, गुण, पर्याय तीन का एक द्रव्य में विचार करे, वह विकल्प है। यहाँ है ? नियमसार। १४५ गाथा। उन्हें याद रह गई है।

नियमसार नहीं ? नियमसार है यहाँ। कितनी कही ?

मुमुक्षु :- १४५ (गाथा)

पूज्य गुरुदेवश्री :- गाथा। **यहाँ भी अन्यवश का स्वरूप कहा है। भगवान अरहन्त के मुखारविन्द से निकले हुए (- कहे गये) मूल और उत्तर पदार्थों का सार्थ (अर्थसहित) प्रतिपादन करने में समर्थ ऐसा जो कोई द्रव्यलिंगधारी (मुनि) कभी छह द्रव्यों में चित्त लगाता है,...** आहाहा! पाठ में है। **दव्वगुणपज्जयाणं चित्त जो कुणइ सो वि अण्णवसो।** वह पराधीन है। आहाहा! १४५ गाथा है। **द्रव्यगुणपर्यायाणां।** द्रव्य अर्थात् त्रिकाली भगवान ज्ञायक प्रभु और गुण अर्थात् आनन्द और ज्ञान उसका गुण और वर्तमान उसकी आनन्द और शान्ति की पर्याय—ऐसे तीन भेद का विचार करने से राग और विकल्प उत्पन्न होता है। आहाहा! अपने द्रव्य, गुण, पर्याय तीन, हों! बाहर के द्रव्य, गुण, पर्याय के विचार करना तो विकल्प है ही। अपने सिवा तीर्थंकर की ओर लक्ष्य जाए तो भी शुभराग है। तीन लोक के नाथ पर दृष्टि जाए तो भी शुभराग (है)। यह तो अपने में द्रव्य-गुण-पर्याय का तीन भेद करते हैं। आहाहा!

दव्वगुणपज्जयाणं द्रव्य अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकभाव। गुण अर्थात् अनन्त ज्ञान, दर्शन, शान्ति, स्वच्छता इत्यादि। पर्याय (अर्थात्) एक गुण की वर्तमान दशा। पर्याय पलटती अवस्था। एक में तीन का विचार करता है तो हम परवश है। हम परवश हैं। आहाहा! बेहद फेर। अपना द्रव्य, गुण, पर्याय तीन का विचार करने से भी राग (होता है)। आवश्यक नहीं है। आवश्यक का अधिकार है। वह आवश्यक नहीं। अधिकार आवश्यक का है। यह अनावश्यक है। आहाहा! दूसरे में आ गया है। आगे कलश में। हमारा विषय तो अभेद ज्ञायक ही है। उसमें है। हम ज्ञायक में रह सके नहीं, वह हमारा विषय छोड़कर अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में आता है, अपना द्रव्य, त्रिकाली गुण और ज्ञानपर्याय, इन तीन का विचार आता है तो प्रभु! परवश हैं। अन्यवश है, पाठ। परवश है, आवश्यक नहीं। उसकी जरूरतवाली क्रिया नहीं। आहाहा! धन्नालालजी! आहाहा!

मुनिराज ऐसा कहते हैं। कल तीन बोल रखे थे न? नहीं? उसमें वहाँ मुनि की बात है। मुनि की बात समकिती की बात से ज्यादा... मुनिराज ऐसा कहते हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव टीकाकार। नियमसार के टीकाकार ऐसा कहते हैं कि हम अपने ज्ञायक में.. हमारा विषय तो यही है। अन्दर आनन्द में रहना, ज्ञायक ध्रुव में (रहना), परन्तु

उसमें रह नहीं सके तो द्रव्य, गुण, पर्याय का विचार आता है तो वह विकल्प अनावश्यक है। आवश्यक नहीं है। आहाहा! गजब बात है! तीर्थंकरदेव वीतराग परमात्मा की चरमसीमा की यह हद है। आहाहा!

अरे..! द्रव्य मैं हूँ, वह भी विकल्प लिया है। १४२ गाथा में। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा भी विकल्प उठाता है, वह भी पराधीन है। आहाहा! अपना स्वरूप ज्ञायक, उसमें रहना और बाहर निकले तो उपयोग का द्रव्य, गुण, पर्याय में रुकना होता है। अरे..रे..! हमारी दशा अन्दर नरम दशा है। आहाहा! हमारी दशा उग्र नहीं है। आहाहा! मुनिराज कहते हैं। हमारी दशा निर्मल नहीं है। हमारा द्रव्य, गुण, पर्याय के विचार में रुकना होता है। आहाहा!

किन्तु वास्तव में वह हमारा विषय नहीं है। है ? आहाहा! गजब बात है! दुनिया कुछ मानती है, वस्तु कहीं दूर रह गयी। आहाहा! चन्दुभाई! द्रव्य, गुण, पर्याय हमारा विषय नहीं है। आहाहा! गजब है! वीतरागमार्ग की पराकाष्टा। मुनिराज नरमाई से अपनी दीनता पर्याय में बताते हैं। अरे..रे..! हम ज्ञायक में रह सकते नहीं। केवली परमात्मा ज्ञायक में सादि-अनन्त रहे। केवली परमात्मा सादि-अनन्त रहे, हम अन्तर्मुहूर्त के सिवा ज्ञायक में रह सकते नहीं और बाहर निकलते हैं तो द्रव्य, गुण, पर्याय तीन का विचार आता है। विचार भी यह आता है। वह भी परवश है, अनावश्यक है। आहाहा! आवश्यक का अधिकार है। आहाहा! गजब बात है! फिर से लिया। आहाहा!

अन्तर चैतन्यप्रभु अकेले ज्ञायक में ध्यान में आनन्द में रहना, अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में रहना, वह हमारा विषय है। उस आनन्द में से निकलकर, आनन्द तो रहता है, परन्तु निकलकर आये तो द्रव्य, गुण, पर्याय का, अपनी एक चीज़ में तीन भेद करके हमको रुकना पड़ता है। आहाहा! अरे..रे..! हद बात है, प्रभु! तेरी। तेरी बात है, नाथ! तू ऐसा है, प्रभु! अन्दर स्वरूप में से निकलकर राग में रुकना, प्रभु! तेरा विषय नहीं। आहाहा! आहाहा!

मुमुक्षु :- यह स्पष्टीकरण तो आपने किया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वस्तु ऐसी है। बहिन की तो महा अनुभवदशा है। उनकी तो बहुत तीव्र दशा है। अन्तर में से सहज भाषा आ गयी है। ये तो बहनों ने लिख लिया, नहीं तो उनको तो कुछ पड़ी नहीं है। कौन लिखता है, यह इन्हें मालूम नहीं पड़ा। आहा..!

मुनिराज कहते हैं, मुनिपना आया, तीन कषाय का अभाव। आहाहा! और क्षण-क्षण में छट्ठे-सातवें, छट्ठे-सातवें में जाते हैं। अन्तर्मुहूर्त में... षटखण्डागम में लिखा है, परन्तु वह अन्तिम का अन्तर्मुहूर्त लिया है। मोक्ष का। शब्द ऐसा पाठ है, अन्तिम के अन्तर्मुहूर्त में छट्ठा-सातवाँ हजार बार आता है। हजारों बार आता है, ऐसा पाठ है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि, अरे..रे..! प्रभु! हम हमारे विषय में रह सकते नहीं। आहाहा! धन्य काल! धन्य अवसर! आहाहा! हमारा विषय तो अकेला ज्ञायक है। वहाँ हमारा धाम, हमारा स्थान, हमारा क्षेत्र, हमारा स्थान, हमारी सम्पदा की ऋद्धि वह है। ज्ञायकपने में आनन्दादि सम्पदा पड़ी है, वह हमारी सम्पदा है। वहाँ हमें निर्विकल्पने रुकना, वह हमारी सम्पदा है। आहाहा! अरे.. प्रभु! मैं वहाँ रह सकता नहीं। आहाहा! परन्तु द्रव्य, गुण, पर्याय के विचार में रुकना पड़ता है। रुकना पड़ता है, हों! त्रिकाली ज्ञायक, उसमें आनन्दादि गुण, उसकी आनन्द आदि दशा, ये तीन बोल का विचार भी पराधीन और अनावश्यक है। अनावश्यक अर्थात् आवश्यक नहीं। आहाहा! गजब बात है। आहाहा! अपनी दीनता, मुनि अपनी पामरता बताते हैं। तो इसके अतिरिक्त साधारण प्राणी.. आहाहा! साधारण ज्ञान और साधारण श्रद्धा में मान ले कि हम.. आहाहा! प्रभु! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

ऐसा कहते हैं, अरेरे..! हमारा जब उपयोग बाहर आता है, हमने जब तक पूर्ण दशा प्रगट नहीं की, आहाहा! उपयोग बाहर आता है, तब द्रव्य, गुण, पर्याय के विचार में रुकना होता है। **किन्तु वास्तव में वह हमारा विषय नहीं है।** आहाहा! अपना एकरूप स्वभाव के सिवा, अपने में तीन प्रकार भी हमारा विषय नहीं है। प्रभु! उसकी बात यहाँ है नहीं, प्रभु! तेरी बात है। आहाहा! प्रभु एकरूप विराजमान अन्दर, उसका एकरूप का ध्यान छोड़कर... आहाहा! अपने द्रव्य, गुण, पर्याय के भेद का विचार करना.. पण्डितजी! इस भेद को व्यवहारनय कहा। गजब किया है! ओहो..! प्रभु! मैं विकल्प में आ गया। अरे..! हमारी चीज़ तो अन्दर रह गई। है उघाड, वस्तु कहीं नहीं चली गयी। परन्तु आगे बढ़ते नहीं और अन्दर रुके नहीं और बाहर आ गये। आनन्द तो है, समकित है, शान्ति है। आहाहा! परन्तु केवलज्ञान के समक्ष अल्पता है। उस अपेक्षा से कहते हैं कि अरेरे..! हमारा वह विषय नहीं। आहाहा! यह मुनिपने की व्याख्या। मुनिपना। आहाहा! गजब बात है, बापू! पंच महाव्रत और फलाना, ढिकना वह विषय तो है नहीं। यह तो एक द्रव्य में तीन का विचार

करना, वह विषय नहीं। एक अपना द्रव्य, हों! पर का नहीं। पर का चाहे कोई भी, तीन लोक के नाथ उनका ज्ञायक, वे ज्ञायक है, ऐसा विचार आता है तो भी विकल्प है। आहाहा! वह अनावश्यक है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **वह हमारा विषय नहीं है। आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है।** क्या कहते हैं? अरेरे..! आत्मा में तो हम नवीनता का भण्डार देखते हैं। फिर भी यह बाहर विकल्प आ जाता है। अन्दर छट्ठे में आते हैं न? छट्ठे गुणस्थान में विकल्प आ जाता है। सातवें में स्थिर हो जाते हैं। उसकी बात करते हैं। कहते हैं, हमें छट्ठे में विकल्प आता है तो द्रव्य, गुण, पर्याय के विचार में रुकना पड़ता है। आहाहा! **आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है।** आत्मा में नवीनता का भण्डार है। प्रभु! उस चैतन्य चमत्कार क्या कहना! छद्मस्थ पूरा पार नहीं प्राप्त करता। केवलज्ञान हो, तब प्राप्त कर सकता है, उस पूर्ण भण्डार भगवान का। आहाहा! ऐसा भण्डार अन्दर पड़ा है।

कहते हैं कि **आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है।** अनन्त काल में नहीं प्रगट हुआ, ऐसी नवीनता का भण्डार है। ऐसा ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता, स्वच्छता... ओहोहो! उसका प्रमाण और उसका नय का विषय, ये कोई अलौकिक भण्डार है। आहाहा! अरे.. प्रभु! तू कहाँ है और कहाँ मान रहा है? यहाँ तो मुनिराज यहाँ तक आये हैं, फिर भी कहते हैं, अरे..रे..! हमें विकल्प में आना पड़ता है, हमारा विषय नहीं है। अरे..!

भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की,... क्या कहते हैं? प्रगट तो है, परन्तु ऐसी विशेष नवीनता प्रगट नहीं की जब तक... आहाहा! **भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की,...** समय-समय में नवीन अपूर्वता, चैतन्य चमत्कार की सम्पदा की ऋद्धि, नयी-नयी एक समय में आनी चाहिए। आहाहा! उसे मुनिराज कहते हैं। आहाहा! **भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता...** पूर्व में एक समय नहीं हुआ। ऐसी नवीनता समय-समय में अपूर्वता प्रगट होती है वह, **भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता—अपूर्वता प्रगट नहीं की,...** आहाहा! क्या नम्रता!! क्या नरमाई। ओहोहो! आहा..!

मुनिराज अन्दर में उतरते हैं। विकल्प आ जाता है। अपने में तीन भेद का। द्रव्य,

गुण और पर्याय। तीन भेद का विकल्प है, वह दुःख है। आवश्यक नहीं। वह जरूरत की चीज़ नहीं है। आहाहा! वह अनावश्यक चीज़ है। आहाहा! यह तो प्रभु, कहीं न कहीं रुककर मान लेता है, प्रभु! उसका फल तुझे मिलेगा। जैसा परिणाम है, वैसा फल मिलेगा। ऐसी मुनिदशा, वह भी कहते हैं, हमें भेदज्ञान द्वारा, अभी राग संज्वलन का उदय है, तो उसका भी भेदज्ञान द्वारा **अपूर्वता प्रगट नहीं की,...** आहाहा! समय-समय में चमत्कार, यह चेतन भगवान चमत्कारिक। उसका चमत्कार समय-समय में यदि नवीन अपूर्व प्रगट नहीं किया, **तो मुनिपने में जो करना था, वह हमने नहीं किया।** आहाहा! गजब है! मुनिपने में जो करना था, वह हमने नहीं किया। मुनियों को यह करना था। लो। यह नहीं पढ़ा था। अन्तिम चार पंक्ति कल नहीं पढ़ी थी। अब, १९३।

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है, टिकाए रखता है, स्थिर रखता है—ऐसी सहज दशा होती है।

सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता है और बाहर आता है; मुनिराज को तो उपयोग अति शीघ्रता से बारम्बार अन्तर में उतर जाता है। भेदज्ञान की परिणति—ज्ञातृत्वधारा—दोनों के चलती ही रहती है। उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता। अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान के अनुसार और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है। पुरुषार्थ के बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती। सहज भी है, पुरुषार्थ भी है॥१९३॥

१९३। **सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है,...** आहाहा! चौथे गुणस्थान में समकिती आत्म-आनन्द अनुभवी, सम्यग्दृष्टि जीव को... आहाहा! **ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है,...** आहाहा! मूल चीज़ तो यह है। सम्यग्दृष्टि चौथा गुणस्थान। पाँचवें में तो विशेष निर्मलता है, छठे की निर्मलता की तो क्या बात करनी! मुनिराज पंच परमेष्ठी। वे भी ऐसी पुकार करते हैं। आहाहा! दूसरे प्राणी को साधारण में अभिमान आ जाए कि हम करते हैं, हमने ऐसा किया।

क्या किया ? प्रभु ! केवलज्ञान किया तो भी कुछ नहीं किया। क्योंकि वह तो स्वभाव है, वैसा प्रगट होता है। नवीन क्या किया ? केवलज्ञान भी स्वभाव है। उसका स्वरूप ही है। उसका सत् का सत्त्व, सत्त्व। प्रभु आत्मा सत् है, उसका सत्त्व। ज्ञान, आनन्द, केवलज्ञान उसका सत्त्व है। सत्त्व उसका प्रगट होता है, वह कोई नवीनता नहीं। आहाहा ! पन्नालालजी ! वहाँ कहीं सुनने मिले ऐसा नहीं है, जहाँ-तहाँ भटकते हैं। आहा.. ! ओहोहो !

यह बहिन के वचन उस समय थोड़े निकले थे। मुर्दा, मानो मुर्दा। समकिती को या मुनि को एक प्रकार का उदय नहीं होता। वह चिट्ठी है, मोक्षमार्गप्रकाश में चिट्ठी है। सबको एक ही प्रकार का उदय हो, और समान दशा उदय की हो, ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टि होने पर भी उदय में फर्क होता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। है यहाँ मोक्षमार्गप्रकाश ? चिट्ठी में है। बनारसीदास। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि **ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही...** भाषा क्या है ? ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही। कोई भेद द्वारा, विकल्प द्वारा नहीं। आहाहा ! ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही।

मुमुक्षु :- ज्ञायक अर्थात् पर्याय ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय में लक्ष्य ज्ञायक पर है। ज्ञायक को ज्ञायक में। पर्याय परन्तु ज्ञायक को ज्ञायक में रहना। ऐसे। पर्याय में भी ज्ञायक को ज्ञायक में रहना। आहाहा ! **ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही...** वह ज्ञायक द्वारा है तो पर्याय भले, परन्तु ज्ञायक द्वारा अन्दर में रहना। राग द्वारा नहीं, पर्याय के लक्ष्य द्वारा नहीं। पर्याय के लक्ष्य द्वारा नहीं, राग द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु :- उदयभाव.. सबका सरीखा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ... केवली को भी औदयिकभावों की नाना प्रकारता जानना। अर्थात् सब धर्मी जीव को उदय समान होता है, ऐसा नहीं है। भाव में अन्दर भले चौथा, पाँचवाँ, छठा आदि हो, परन्तु उदय में फेरफार है। ऐसा है इसमें। आहाहा !

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही... भले पर्याय ज्ञायक द्वारा ही काम लेती है। क्योंकि परिणमन तो पर्याय में है। ज्ञायक में परिणमन नहीं है। परन्तु परिणमन में ज्ञायक पर दृष्टि है तो ज्ञायक पर ही पर्याय वहाँ रखना। आहाहा ! ये तो रात्रि में बहिन बोले

होंगे। आहाहा! समझ में आया? भाग्य हो, उसे मिले ऐसा है। ऐसी बात है। मूल मार्ग सुनना, जैन का यह मार्ग है। मूल तो उसमें यह है। 'करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख, मूल मार्ग सांभणो जैननो रे... करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख।' सन्मुख करके सुनो। श्रीमद् तो एकावतारी हो गये। एक भव करके मोक्ष जाएँगे। निश्चित है, उसमें कोई फेरफार नहीं है। वैमानिक में है वर्तमान। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को...** द्रव्य, द्रव्य। द्रव्य द्वारा ही। है? भले पर्याय कार्य करती है। परन्तु पर्याय को द्रव्य द्वारा द्रव्य में रहना। द्रव्य द्वारा द्रव्य में रहना, ऐसा पर्याय करती है। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म पड़े, इसलिए लोग कहते हैं कि निश्चय है, वहाँ तो निश्चय है, एकान्त है, व्यवहार की बात नहीं है। प्रभु! ये सब व्यवहार नहीं है तो क्या है? बोलना, कहना, भाग करना, एक वस्तु में भेद करके कहना, वह सब व्यवहार है। व्यवहार है, वह आदरणीय नहीं। व्यवहार है नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, पाठ कैसा है? **ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही...** ऐसा शब्द पड़ा है। ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही। पर्याय में ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही ध्यान में लेना। आहाहा! **अपने में धारण कर रखता है,...** आहाहा! शब्द बहुत ऊँचा आ गया है। **सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को...** द्रव्य.. द्रव्य ज्ञायक। त्रिकाल भगवान। सनातन सत्य जगत की चीज़ महाप्रभु, सत् का सत्त्व, ऐसा जो उसका गुण, गुणरूप से कहो तो ज्ञायकभाव कहने में आता है। नहीं तो है तो पारिणामिकभाव। परन्तु पारिणामिकभाव तो परमाणु में भी है और धर्मास्ति में भी है। इसलिए यहाँ ज्ञायकभाव कहते हैं। बाकी है तो वह पारिणामिकभाव। त्रिकाली पारिणामिकभाव को पारिणामिकभाव द्वारा ही। आहाहा!

ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही... 'ही' है। **अपने में धारण कर रखता है,...** अपने में धारण कर रखता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव। आहा...! **टिकाए रखता है,...** ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा अपने में टिकाये रखता है। अपने में टिकते हैं। आनन्दस्वरूप भगवान त्रिकाल, ध्रुव आनन्द, हाँ! आहाहा! उसमें टिकता है, तब तो पर्याय में आनन्द आया। टिकता है, तब तो पर्याय में आनन्द आया। आहाहा! **स्थिर रखता है...** अपने में स्थिर रहता है। ज्ञायक द्वारा ज्ञायक स्थिर रहता है। आहाहा! यह बात कठिन लगे लोगों को। भाई!

वस्तु स्वरूप तो ऐसा है। आहाहा! **ऐसी सहज दशा होती है।** ऐसी दशा करनी पड़ती नहीं। ऐसी सहज दशा होती है। आहाहा! सहज दशा हो गई है ऐसी, बस।

सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है। भेदज्ञान तो पहले हुआ है। क्षण-क्षण में स्वभाव सन्मुखता चलती है तो पुरुषार्थ तो स्वभाव की ओर चलता ही है। क्या कहा, समझ में आया? **सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है।** आहाहा! अन्तर में आनन्द की ओर झुकना तो होता ही है। आहाहा! ये तो उसकी दशा है। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता है...** गृहस्थाश्रम में हो, पंचम गुणस्थान में गृहस्थाश्रमी जीव, **सम्यग्दृष्टि को उसकी दशा के अनुसार...** उसकी दशा के अनुसार **उपयोग अन्तर में जाता है...** छठे मुनि को उपयोग अन्तर में जाता है, वैसा नहीं जाता। मुनि को जैसे उपयोग एकदम अन्दर में जाता है, क्षण में सप्तम और क्षण में छठा, ऐसे पंचम गुणस्थानवाले को नहीं आता। थोड़ी देर भी लगती है, कोई बार। कोई बार अन्तर्मुहूर्त में निर्विकल्प ध्यान आ जाता है, कोई बार महीने के बाद आता है। मुनि की दशा जैसी नहीं है, इसलिए ऐसा कहते हैं। इसलिए **सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता है और बाहर आता है;...** विकल्प आता है फिर से। आहाहा! किसी समय अन्तर ध्यान में लग जाए... आहाहा! बाहर आते हैं, तब विकल्प आता है।

मुनिराज को तो उपयोग अति शीघ्रता से बारम्बार अन्तर में उतर जाता है। देखो! गृहस्थ की अपेक्षा मुनिराज सच्चे भावलिंगी जो होते हैं,... आहाहा! उनको तो अति शीघ्रता से, छठे में आते हैं, लेकिन अति शीघ्रता से सातवें में चले जाते हैं। पौन सेकेण्ड के अन्दर छठे में रहकर सातवें में चले जाते हैं। आहाहा! ऐसी दशा है। मुनिपना किसको कहे! आहाहा! वस्तुस्वरूप वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ का पंथ कोई अलग है। **मुनिराज को तो उपयोग अति शीघ्रता से बारम्बार...** छठे-सातवें में उतर जाता है। छठे से सातवें में एकदम जाते हैं। ध्यान करते समय भी जाते हैं और न करे तो भी छठे में से सातवें में एकदम जाते हैं।

भेदज्ञान की परिणति—ज्ञातृत्वधारा—दोनों के चलती ही रहती है। गृहस्थ हो या मुनि हो। समकिती को भेदज्ञान की परिणति अर्थात् ज्ञातृधारा अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा की

धारा... आहाहा! **दोनों के चलती ही रहती है।** दोनों को सदा चलती रहती है। आहाहा! दो बोल लिये। भेदज्ञान की परिणति अर्थात् ज्ञातृदशा, ज्ञाता की अवस्था। भगवान ज्ञाता पकड़ लिया, अनुभव लिया है। तो समकिती को ज्ञाता की धारा सदा चलती ही है। **दोनों के चलती ही रहती है।** चलती ही रहती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, परन्तु मार्ग तो यह है। दुनिया ने चाहे जैसी कल्पना की हो। आहाहा! बाहर से चाहे जैसे माने, मनाये। तीन लोक के नाथ परमात्मा का विरह है।

मुनिराज ने प्रश्न किया था, मुनि नहीं, क्षुल्लक। मनोहरलालजी। मनोहरलालजी ने एक बार प्रश्न किया। वहाँ जयपुर में आये थे। उद्देशिक का आपसे खुलासा हो कि गृहस्थ लोग, साधु के लिये बनाते हैं, उसमें उसका क्या? करता नहीं, कराता नहीं, उसमें क्या है? उसमें कोई दिक्कत नहीं है। ऐसी एक बात बाहर रखो। मैंने कहा, प्रभु! प्रभु का विरह है। प्रभु के बाद ऐसी बात चले नहीं, नाथ! हम तो, क्षुल्लक भी उसके लिये लेता है तो हम तो क्षुल्लक भी नहीं मानते हैं। उसके लिये बनाया हुआ आहार लेता है, हम तो उसे क्षुल्लक भी नहीं मानते। भगवान के विरह में ऐसे गप्प लगाना कि गृहस्थ उसके लिये करता है तो उसमें क्या है? लेनेवाला तो करता नहीं, कराता नहीं। लेकिन लेना है, वही अनुमोदन है। आहाहा! भगवान के विरह में दूसरी बात करना..? प्रभु! परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में। यहाँ प्रभु है नहीं। उन्होंने जो यह कहा है, उससे विरुद्ध प्रभु के विरह में नहीं कह सकते। जिसके लिये उद्देशिक किया है, वह ले, उसमें अनुमोदन कोटि टूटती है।

यह तो हमारे (संवत्) १९६९ के साल की बात है। १९६९। ७० के पहले ६९। ६७ वर्ष हुए। उस वक्त से यह प्रश्न है। गुरु को मैंने प्रश्न किया था। १९६९ की साल। ७० साल पहले। साधु के लिये मकान बनावे तो उसकी कौन-सी कोटि टूटती है? प्रभु! नौ कोटि में कौन-सी कोटि टूटे? महाराज! ऐसा प्रश्न किया था। अभी दीक्षा नहीं ली थी। पहले प्रश्न किया था। राणपुर में। गुरु भद्रिक थे। उन्हें ऐसा लगा कि यह दीक्षा लेने की तैयारी में है, उसे ऐसा...? (उन्होंने कहा), खुशालभाई—तुम्हारे बड़े भाई तुम्हारे लिये मकान बनाया हो, तुम उपयोग करो तो उसमें क्या है? इनको अभी कुछ नहीं कहना। उपयोग करे, वही अनुमोदन है। नौ कोटि में अनुमोदन टूटता है तो नौ ही कोटि टूट जाती है। मन, वचन और काया; करना, कराना और अनुमोदन। नौ कोटि में से एक कोटि

उसकी सब कोटि टूट जाती है। १९६९ की साल में हुआ था। आहाहा! बहुत चर्चा हुई थी। हमें तो अन्दर से बात आती थी। अन्दर से बहुत प्रश्न चलते थे। हमने कहा, हम ऐसे नहीं मानते, भैया! जिसके लिये किया, वह ले तो उसमें कोटि टूटी। नौ कोटि टूटी। वह साधु नहीं है। मकान उसके लिये बनाया, मकान का उपयोग करे या आहार (ले), वह साधु नहीं। १९६९ की साल। दीक्षा १९७० में हुई।

यहाँ बहिन कहती है, आहाहा! **भेदज्ञान की परिणति—ज्ञातृत्वधारा—...** एक ही बात है। लाईन की है न? लाईन का अर्थ भेदज्ञान की परिणति अर्थात्। लाईन का अर्थ वह है। ज्ञातृधारा-ज्ञाता-दृष्टा। अन्तर में जो ज्ञाता-दृष्टा की धारा चलती है, भले कषाय में दो और तीन कषाय हो, परन्तु ज्ञातृधारा **दोनों के चलती ही रहती है। उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ...** आहाहा! गृहस्थ को और मुनि को **जब से भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता।** आहाहा! अपना वीर्य स्वरूप सन्मुख हमेशा चलता ही है। वह सहज चलता है। सम्यग्दर्शन हुआ तो पुरुषार्थ-वीर्य स्वभाव सन्मुख सहज चलता ही है। मैं करूँ, ऐसा भी वहाँ नहीं है। उस ओर चलता ही है। आहाहा! है? **उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता।** अन्तर्मुख में जो पुरुषार्थ की गति चलती है, उसमें कभी विरह होता नहीं।

अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान के अनुसार... आहाहा! स्वभाव की ओर पुरुषार्थ चलता है। **और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है।** आहाहा! सहज दशा हो गई है। सम्यग्दृष्टि की भी सहज दशा है, मुनि की भी सहज वस्तु की स्थिति है, ऐसी दशा हो गई है। वस्तु की जैसी स्थिति है, ऐसी पर्याय भले अल्प हुई, परन्तु ऐसी दशा हो गई है। आहाहा! **अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान के अनुसार और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है। पुरुषार्थ के बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती।** आहाहा! ध्रुव के ध्येय के ध्यान के पुरुषार्थ बिना एक समय भी समकिती को भिन्न नहीं रहता। ध्रुव का ध्यान, ध्रुव ध्येय, उसको ध्येय बनाया, वह ध्येय कभी हटता नहीं। **पुरुषार्थ के बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती। सहज भी है,...** वस्तु जो प्रगट हुई, वह सहज भी है और **पुरुषार्थ भी है।** दोनों है। स्वभाविक भी है और पुरुषार्थ स्व की ओर झुकता है, ऐसी दोनों धारा है। आहाहा! ऐसी

बातें हैं। ऐसा कैसा यह उपदेश? वीतराग का उपदेश है, प्रभु! १९३।

चौथे में और छठे में सहज पुरुषार्थ भी होता है और पुरुषार्थ भी करते हैं। स्वाभाविक दशा तो हो गई है। स्वाभाविक दशा जो हो गई है, अब उतना पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता, वह दशा तो हो गई। अब विशेष दशा होने में पुरुषार्थ स्वभाव की ओर चलता है। आहाहा! समझ में आया? दोनों में क्या अन्तर है? जो दशा अन्दर से खिली है, चौथे या पाँचवें में अन्दर सम्यक् अनुभव, आनन्द का अनुभव आया, वह सहज भी है और पुरुषार्थ भी है। साथ में वीर्य भी काम करता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। फिर कौन-सा है? १९७। किसी ने लिखा है। ओहो..! बहुत बड़ा है।

प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना। उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके उन दोनों की सन्धि में सावधान होकर उसका प्रहार करना। सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर।

अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं, किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभाव के बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर। जिस क्षण विभावभाव वर्तता है, उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले। भिन्न ही है परन्तु तुझे नहीं भासता। विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;—जैसे पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही हैं तदनुसार।

प्रश्न :—सोना तो चमकता है, इसलिए पत्थर और सोना—दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं, परन्तु यह कैसे भिन्न ज्ञात हों?

उत्तर :—यह ज्ञान भी चमकता ही है न? विभावभाव नहीं चमकते किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात होता है। ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है। ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी?

जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोती का पारखी उसमें से सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण

करना'। जो जाननेवाला है, सो मैं; जो देखनेवाला है, सो मैं—इस प्रकार उपयोग सूक्ष्म करके आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है। यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है। व्रत, तप या त्यागादि भले हों, परन्तु वे साधन नहीं होते, साधन तो प्रज्ञा ही है।

स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है। स्वभाव में ही रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है। तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है। ऐसा नहीं होता कि पर में तीव्र रुचि हो और उपयोग अन्तर में प्रज्ञाछैनी का कार्य करे॥१९७॥

१९७। **प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना।** आहाहा! क्या कहते हैं ? प्रज्ञाछैनी... क्योंकि आत्मा और राग—सूक्ष्म विकल्प के बीच में सन्धि है। सन्धि है-सांध है-दरार है। एक नहीं हुए। प्रज्ञाछैनी का श्लोक है, समयसार में। प्रज्ञाछैनी का श्लोक है। सन्धि हुई नहीं, निःसन्धि है। भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु और राग का कण, बीच में सन्धि है। आहाहा! समझ में आया ? प्रज्ञाछैनी है। उसमें है। आहाहा! कौन-सा आया ? प्रज्ञाछैनी को... आहाहा! शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि। सन्धि है। यह ज्ञानस्वरूप और यह राग, ऐसे दो के बीच भिन्नता ही है। भिन्न-भिन्न चीज़ पड़ी है। भेदज्ञान जब से हुआ, तब से भिन्न है। आहाहा!

उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके उन दोनों की सन्धि में सावधान होकर... वह विशेष बात है.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)